आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 2/अंक 2/जून 2022
Received: 29/04/2022; Accepted: 07/06/2022; Published: 24/06/2022

हिंदी-मराठी कविता में आंबेडकरवादी विचारधारा

- प्रो. सुधाकर शेंडगे
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
डॉ बाबासाहेब आंबेडकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद (महाराष्ट्र) 431004
ई-मेल :dr.sudhakarshendge@gmail.com
मोबाइल : 9421335509

प्रो. सुधाकर शेंडगे, हिंदी-मराठी कविता में आंबेडकरवादी विचारधारा , आखर हिंदी पत्रिका, खंड 2/अंक 2/जून 2022, (79-87)

शोधालेख सार :

संभवतः दलित साहित्य और आंबेडकरवादी साहित्य संकल्पनाओं को एक ही माना जाता है जब कि, इनमें काफी अंतर है। आंबेडकर की विचारधारा से प्रेरित साहित्य को आंबेडकरवादी साहित्य कहा जाता है। दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य कहा जाता है। आंबेडकरवादी साहित्यकार भारतीय संविधान, संविधानिक मूल्यों और मानवाधिकार के प्रति प्रतिबद्ध दिखाई देता है।

हिंदी-मराठी की आंबेडकरवादी कविता में स्वातंत्र्य, समता और बंधुता जैसे संविधानिक मूल्यों की मांग की गयी है। आंबेडकरवादी कवि जाति, धर्म,वर्ण और वर्गभेद मिटाकर वर्णहीन, वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। शिक्षा के बगैर सामाजिक परिवर्तन संभव ही नहीं है, इस बात को वह भली भांति जानता है। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था का विरोध और परंपरा से विद्रोह तथा नकार ही इस कविता का मूल स्वर है। मानवीय मूल्यों की रक्षा और अपने संवैधानिक अधिकारों की मांग हिंदी-मराठी की आंबेडकरवादी कविता करती है।

आंबेडकरवाद व्यक्तिवादी नहीं तो समष्टिवादी है। संविधान में जिन मानवाधिकारों की मांग की गयी है,वे आंबेडकरवाद के मार्गदर्शक तत्व है। आंबेडकरी विचारधारा एक वैचारिक, साहित्यिक आंदोलन है। संविधान के कारण ही दलित, वंचित,स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्यकों को अपने हक़ और अधिकार मिलने लगे हैं। हिंदी-मराठी कविता में हमें प्रखर आंबेडकरवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत आलेख इसी दिशा में एक सार्थक पहल करता है।

हिंदी-मराठी कविता में आंबेडकरवादी विचारधारा

प्रस्तुत विषय पर चर्चा करने से पहले यह समझ लेना बहुत आवश्यक है कि, आंबेडकरवाद क्या है? दरअसल आंबेडकरवादी विचारधारा इक्कीसवीं सदी के महानायक विश्वरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर की प्रेरणा से अनुकरण कर परिवर्तन की दिशा में मार्गक्रमण करनेवाला एक वैचारिक आंदोलन है। आंबेडकरवाद निरंतर जातिविहिन, वर्गहीन, वर्णहीन और लिंगहीन समाज की मांग करता आया है। आंबेडकरवाद किसी एक जाति, किसी एक धर्म, किसी एक वर्ग, किसी एक वर्ण या किसी एक लिंग तक सीमित नहीं है। आंबेडकरवाद दीन, दलित, पीड़ित, वंचित स्त्री इन सभी के दु:ख-दर्द का ही बखान नहीं करता बल्कि उनके सांवैधानिक हक़ और अधिकारों की मांग करता है। जाति-वर्गहीन व्यवस्था का निर्माण ही डॉ. भीमराव आंबेडकर का ध्येय था। शोषणमुक्त समाज का निर्माण करना उनका सपना था। म. फुले और डॉ. आंबेडकर की प्रगतिशील विचारधारा से प्रेरणा लेकर ही आंबेडकरवादी साहित्य का निर्माण हुआ है।

आंबेडकरवादी विचारधारा :

आंबेडकरवाद की भूमिका के संबंध में डॉ. यशवंत मनोहर लिखते हैं, "आंबेडकरवाद धार्मिकता को नहीं मानता। विश्व की नैतिक व्यवस्था ईश्वर पर नहीं बल्कि मनुष्य के अच्छे-बुरे कर्मनियमों पर निर्भर है। इसीलिए बुद्धिवादी, सामाजिक न्याय के लिए पोषक कर्म करनेवाले लोग निर्माण करना ही आंबेडकरवादी भूमिका है।"[1] आंबेडकरवादी साहित्य भी इसी दिशा में पहल करता आया है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यातनाएँ सहनेवाले मूक लोगों को अभिजनवादी साहित्य-संस्कृतिवालों ने साहित्य से भी वंचित रखा था। इसी दलित, पीड़ित, वंचित समाज को वाणी देने का महत्त्वपूर्ण कार्य आंबेडकरवादी विचारधारा और साहित्य ने किया है।

आंबेडकरवाद व्यक्तिवादी नहीं तो समष्टिवादी है। संविधान में जिन मानवाधिकारों की मांग की गयी है, वही स्वातंत्र्य, समता और बंधुत्व आंबेडकरवाद के मार्गदर्शक तत्त्व हैं। आंबेडकरवादी विचारधारा एक साहित्यिक वैचारिक आंदोलन है। डॉ. आंबेडकर ने निरंतर शिक्षा का महत्त्व प्रतिपादित किया है। उनका बहुमूल्य संदेश ही था, 'शिक्षित बनो, संघटित हो जाओ और संघर्ष करो।' उन्हें पता था कि जब तक लोग शिक्षित नहीं होगें तब तक वे सचेत नहीं होंगे। जब तक सचेत नहीं होंगे तब तक संघटित नहीं होंगे, तब तक संघर्षशील कैसे बनेंगे? संसार का यही नियम है कि जो अपना इतिहास समझता है वही इतिहास बनाता है। धर्म को समझता है, परंपरा को समझता है, संस्कृति को और उसकी तिकड़मबाजियाँ समझता है। परंपरा को और हजारो वर्षों की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ना इतना आसान भी नहीं होता। इसीलिए संघर्ष महत्त्वपूर्ण बन जाता है। डॉ. आंबेडकर बहुत अच्छी तरह से जानते थे कि यह लड़ाई कई स्तर पर लड़नी होगी। इसीलिए ही उन्होंने अपने अनुयायियों को पेन (लेखन) और ब्रेन (दिमाग़) का समुचित उपयोग करने की सलाह दी थी। आंबेडकरवादी साहित्य इसी प्रेरणा की उपज है। आंबेडकरवादी साहित्य के संबंध में आंबेडकरवादी लेखक-विचारक ज.वि. पवार अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कहते हैं कि, "आंबेडकरवादी विचारधारा नामक संज्ञा, जाति, धर्म, देश, भाषा, वंश, संस्कृति, सभ्यता से बिल्कुल अलग और परे है,

इसकी कोई सीमा नहीं है। यह प्रबुद्ध विचारधारा सीमाओं से मुक्त है। हमारा साहित्य डॉ. आंबेडकर से अनुप्रेरित होकर ऊर्जा प्राप्त करता है। इसलिए हमारे साहित्य का नाम आंबेडकरवादी साहित्य ही हो सकता है, अन्य दूसरा नहीं।"[2] अर्थात परिवर्तन, विद्रोह और क्रांति का उद्घोष ही आंबेडकरवादी साहित्य का मूल उत्स है।

शिक्षा ही परिवर्तन का आधार :

डॉ. आंबेडकर की प्रेरणा से शिक्षा ग्रहण करने के बाद क्या परिवर्तन हुआ हमारे जीवन में इस बात का बखान हिंदी के मूर्धन्य कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी एक कविता में इस प्रकार किया है –

"मरते-मरते मेरा बाप थमा गया

मेरे हाथ में कलम झाड़ू की जगह

कालग्रस्त अंधेरों की सिसकियां

और मुक्ति का घोषणापत्र लिखने के लिए"[3]

पेन और ब्रेन से कितना महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आता है, इस बात को रेखांकित करनेवाली यह कविता है। परंपरा यदि तोड़नी है तो झाड़ू की जगह लेखनी उठानी होगी और अपने हाथों से ही अपनी मुक्ति का घोषणापत्र लिखना होगा, यह स्वर यह कविता ध्वनित करती है। आंबेडकरवादी साहित्य की हरेक विधा फिर वह कविता हो, कहानी हो, आत्मकथा हो या और कुछ वह व्यक्तिगत बनकर नहीं बल्कि सामूहिक आवाज़ बनकर आता है। कवि धूमिल अपनी एक कविता में बहुत सुंदर बात लिखते हैं कि,

"मेरी कविता इस तरह

अकेले को सामूहिकता देती है

और समूह को साहसिकता"[4]

यह बात आंबेडकरवादी विचारधारा को भी लागू होती है। इसे यूँ कहा जा सकता है कि, 'डॉ. आंबेडकर की विचारधारा अकेले को सामूहिक और समूह को साहसिक बनाती है।'

जब आदमी अपना इतिहास उकेरता है तो उसके हाथ में कई तथ्य आ जाते हैं। जहाँ तक अन्याय का सवाल है, विशिष्ट जन-जातियों पर निरंतर होता आया है। अक्सर बड़े समूह ने छोटे समूह पर अन्याय-अत्याचार किया है, उनका शोषण किया है। अपने पुरखों का इतिहास और व्यवस्था विरोध करनेवाले चरित्रों को किस ढंग से रौंदा गया है, इस साज़िश को भी वह समझ गया है। अन्याय की इस परंपरा को लेकर उसके शब्द फूट पड़ते हैं –

"मेरे मस्तिष्क में शंबुक दौड़ रहा है

मेरे अंग-अंग में एकलव्य सुलग रहा है

मेरे कंठ में बलिराजा गर्जना कर रहा है

मेरी आँखें अर्धनिमिलित हो रही है

मेरी धमनियों से रोहिणी बह रही है

मेरी निगाहें तृष्णा पर तीर चला रही हैं

मेरे मन की सरिता बह रही है बुद्धगया से सारनाथ तक"[5]

स्वातंत्र्य, समता और बंधुता से प्रतिबद्धता:

आंबेडकरवादी साहित्यकार व्यवस्था की सारी तिकडमबाजियों को समझ चुका है। देश 1947 में स्वतंत्र हुआ लेकिन वह परिवर्तन नहीं आया जो अपेक्षित था। अब तक दलित, वंचितों का सारा जीवन सामंतवादी व्यवस्था पर निर्भर था। जमींदारों के ही वे आश्रित हुआ करते थे। पसीना, मेहनत, मजदूरी की कोई कीमत नहीं थी। जमीन तो छोड़िए घर भी नहीं थे। झुग्गी-झोपडियों में रहते हुए दो जून की रोटी भी नसीब नहीं थी। यदि सबकुछ उन्हीं का है तो हमारा क्या है? यह प्रश्न उपस्थित करते हुए एक कवि लिखता है –

"चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की, तालाब ठाकूर का

भूख रोटी की, रोटी बाजरे की, बाज़रा खेत का

खेत ठाकूर का, हल ठाकूर का

हल की मूठ पर हथेली अपनी

फ़सल ठाकूर की, कुआं ठाकूर का, पानी ठाकूर का

खेत खलिहान ठाकूर के, गली मोहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या? गांव, शहर, देश!"[6]

वर्णव्यवस्था को मिटाना, समताधिष्ठित समाज व्यवस्था निर्माण करना आंबेडकरवाद का सबसे बड़ा ध्येय है। वर्ण वर्चस्व के कारण ही जातिवाद फैला हुआ है। यहां की धर्मव्यवस्था ने चार वर्ण निर्माण किये और एक को दूसरे से हीन बताया। यह चार वर्ण कैसे तैय्यार हो गये, इसकी भी एक मनगढ़ंत कहानी सुनाई गयी कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए और शूद्र पैरों से। वर्णवर्चस्ववादी व्यवस्था का यह सबसे बड़ा षडयंत्र था, दलित-वंचितों को नीचा दिखाना। इस मिथक कथा से यह समझाना कि, तुम्हारी जगह हमारे चरणों में

ही है। लेकिन आंबेडकरवादी साहित्यकार जब पढ़-लिखकर इस षडयंत्र को समझ गया तो उसने इस व्यवस्था से ही सवाल किया कि –

"मनुष्य का जन्म होता है, सिर्फ मां के गर्भ से

फिर आप कैसे हो गये, ब्रह्मा के मुख से?"[7]

इस कविता की पंक्तियां डॉ. भीमराव आंबेडकर के "शिक्षा शेरनी का दूध है, उसे जो भी प्रश्न करेगा, वह जरूर दहाड़ मारेगा" इस संदेश को बहुत बढ़िया ढंग से प्रस्तुत करती है।

जाति के ज़हर ने दीन-दलितों का मनोबल तोड़ने का काम किया था। जाति के कारण ही बार-बार अपमानित-प्रताड़ित होते रहे। अस्पृश्यता के कारण गांव में रहनेवाला आदमी भी गांव का हिस्सा नहीं बन पाया। गांव के बाहर एक कोने में दलित-वंचितों की झुग्गी-झोपडियाँ होती है। सार्वजनिक कुएँ पर वे पानी नहीं पी सकते। गांव के मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते। गांव के किसी भी सार्वजनिक कार्यक्रमों में शरीक नहीं हो सकते। मराठी के आंबेडकरवादी कवि अपनी एक कविता में व्यवस्था की धज्जियां उड़ाते हुए लिखते हैं –

"त्यांच्या वराती, ज्या वेशीतून थाटानं जातात

त्या वेशीतून आमची प्रेतं ही नेता येत नाहीत"[8]

अर्थात् यह कैसी व्यवस्था है, जहाँ गाँव की कमान से सवर्णों की बारातें बड़े ठाठ-बाट से निकलती है, वहाँ से हमारी अर्थियाँ भी नहीं जा सकती, ऐसा क्यों?

आज देशभर में आजादी का अमृत महोत्सव मनाया जा रहा है? पर क्या स्वतंत्र्यप्राप्ति के 75 साल बाद भी हम दीन-दलितों को रोटी, कपड़ा और मकान दे पाए हैं? आज भी अनेकों को दो जून की रोटी भी नसीब नहीं है। अनेक झुग्गी-झोपड़ियों में बच्चे कुपोषित हैं। शिक्षा तो आज भी इनसे कोसों दूर है। देश ऐसे लोगों के हाथ में है, जिनके पास भूख का भी जवाब मंदिर ही है। जातिवाद का ज़हर फैलाकर अनेकों को दिन-दहाडे जिंदा जलाया जाता है। स्वातंत्र्य और रामराज्य के संबंध में प्रसिद्ध कवि नामदेव ढसाळ ने प्रश्नचिन्ह उपस्थित किया है। कई साल पहले लिखी हुई यह कविता आज भी प्रासंगिक बनी हुई है –

"स्वातंत्र्य कुठला गाढवीचं नांव आहे ?

रामराज्याच्या कितव्या घरात आपण ऱ्हातोत?"[9]

स्वतंत्रता कौन सी गधी का नाम है? कौन सा रामराज्य? रामराज्य के किस घर में हम रहते है? इस प्रकार के प्रश्न यह कविता उपस्थित करती है।

विद्रोह और नकार :

निरंतर अन्याय-अत्याचार करने वाली धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह करना, गुलामी की, शोषण की व्यवस्था को नकारना और डॉ. आंबेडकर की विचारधारा से लोगों को आंदोलित करना ही आंबेडकरवादी साहित्य का उद्देश्य है। अण्णाभाऊ साठे ने इसे सुंदर शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

"जब बदल घालुनी घाव

मज सांगुन गेले भीमराव"[10]

अर्थात डॉ. भीमराव ने ही हमें यह अनमोल संदेश दिया है कि यदि गुलामी की जंजीरे तोड़नी है, शोषण से मुक्त होना है तो व्यवस्था पर प्रहार करना सीखो। तभी तुम्हारे जीवन में कुछ परिवर्तन आने की संभावना है। इसीलिए ही आंबेडकरवादी साहित्य ने विद्रोह और नकार को मूल स्वर बनाकर प्रस्तुत किया है। आंबेडकरी अनुयायियों को इस बात का पूर्ण विश्वास है कि, हमारी बस्ती में भी एक-न-एक दिन सूरज अवश्य उगेगा। नारायण सुर्वे के शब्दों में –

"याच वस्तीतून आपला सूर्य येईल

तोवर मला गातच राहिले पाहिजे

नगर, वेशीत अडखळतील ऋतु

तोवर प्रिय जागत राहिले पाहिजे"[11]

आंबेडकरवादी साहित्यकार धीरे-धीरे अपने शब्द सामर्थ्य को समझ गया है। प्रारंभ में आंबेडकरवादी साहित्य तथा भाषा का तथाकथित अभिजनवादियों ने प्रखर विरोध किया। इस साहित्य की ओर हीनता की दृष्टि से देखा गया। साहित्य का सौंदर्यशास्त्र पर प्रश्न उठाया गया। आंबेडकरवादी प्रखर साहित्य को रोकने की यह एक साजिश थी। लेकिन आदमी जब पूरी तरह से जाग जाता है तो फिर नहीं सोता। प्रेमचंद ने भी कहते हैं, 'अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।' कवि मुकुंद राजपंखे ने बहुत ही सुंदर बात लिखी है –

"माझ्या झोपलेल्या पिढ्या, मला जागाया पाहिजे

सूर्य झोपतो का कधी, तसे वागाया पाहिजे"[12]

आज का आंबेडकरवादी कहता है कि मेरी कई पीढियाँ सोती रहीं और हम अंधेरे में ही भटकते रहे। लेकिन अब मुझे जागना चाहिए। बाबासाहेब नाम का सूर्य कभी सोया नहीं। यदि हम उनके अनुयायी हैं तो जागते रहना हमारा धर्म है। यही है आंबेडकरवादी कवि के शब्दों का सामर्थ्य। शब्दों में बहुत बड़ी शक्ति होती है। शब्द आग भी लगाते है और सांत्वना के लिए शब्द की ही आवश्यकता पड़ती है। हजारों सालों से जिनके मुंह से शब्द ही चुराये गये थे, उन्हीं लोगों को शब्दों की शक्ति का परिचय इन शब्दों में कराया गया है –

"शब्दांनीच पेटतात घरे दारे, देश आणि माणसे सुद्धा

शब्द विझवतात आग ही, शब्दांनीच पेटलेल्या माणसांची

शब्द नसते तर पडल्या नसत्या आगीच्या ठिणग्या

वाहिले नसते आसवांचे महापूर, आले नसते जवळ कुणी

शब्द नसते तर..."[13]

शब्द इतने प्रखर होते हैं कि वे घर-बार तो क्या देश को भी आग लगा सकते हैं। शब्द ही आग बुझाने का काम करते हैं। कोई किसी को शब्द देता है और उसका पालन करता है। शब्द ही हमको एक-दूसरे से बांधने का काम करते हैं। शब्द नहीं होते तो कैसे आते हम एक दूसरे के पास?

व्यवस्था विरोध :

आंबेडकरवादी साहित्यकार अपनी शब्द-सामर्थ्य को लेकर बहुत अधिक सचेत दिखाई देता है? वह जानता है कि उसके समाज के लिए यह शब्द किस प्रकार का आधारकार्ड बनकर उसे लड़ने की प्रेरणा दे सकते हैं –

"शब्दांनों माझे सोबती व्हा

आणि पसरा इथल्या अणु-रेणुत

कोरभर भाकरीसाठी वणवण फिरणाऱ्या

निराश्रितांचे दु:ख व्हा

घोटभर पाण्यासाठी तडफडणाऱ्या

दु:खितांचे अश्रू व्हा, शब्दांनो

तुम्ही छत व्हा, अन्न व्हा, वस्त्र व्हा

माणुसकीच्या हक्कासाठी शब्दानों, तुम्हीच शस्त्र व्हा"[14]

आंबेडकरवादी अपनी भूमिका को बहुत अच्छी तरह से समझ गया है। दलित, वंचित, पीड़ितों के लिए ही वह अपने शब्द खर्च करना चाहता है, ताकि उनको उनकी मूलभूत आवश्यकताएँ – रोटी, कपड़ा और मकान मिले, उनके अपने हक़ और अधिकार मिले। इसीलिए ही उनके शब्द, शस्त्र बनेंगे।

आंबेडकरवादी समाज आज परिवर्तन की दिशा में अग्रेसर दिखाई देता है परंतु वह यह भी जानता है कि संघर्ष समाप्त नहीं हुआ है। सवर्ण मानसिकता का आज भी सामना करना पड़ता है। वे पुन: पुन: अपने तंत्र-मंत्र-षडयंत्र का जाल फेंकते हैं। वे किन हदों को पार करते हुए हमको तोड़ने का प्रयास करेंगे, इस साज़िश को भी वह अब समझ गया है –

"वे अपनी हर गोली, हर ग्रंथ

हर विचार, हर तंत्र-षडयंत्र को

हमारा इन्कलाब कुचलने के लिए ही

इस्तेमाल करेंगे, हर दौर की तरह"[15]

भारतीय संविधान से प्रतिबद्ध :

'भारतीय संविधान' भारतीय समाज को दी गयी डॉ. बाबासाहब की अनमोल भेंट है। इस संविधान के कारण ही दलित, स्त्री, आदिवासी, अल्पसंख्य समाज को उनके हक़ और अधिकार मिलने लगे हैं। कई वर्षों के संघर्ष के बाद सम्मान की रोटी नसीब हुई है। लेकिन बार बार संविधान खतरे में दिखाई देता है, जिसकी चिंता कवि को है । वह इसे कैसे बर्दाश्त कर सकता है –

"मुझे बर्दाश्त नहीं होता शैतान के हाथ में

भारतीय संविधान का होना

मुझे बर्दाश्त नहीं होता भारतीय संविधान को

मनुवादियों के हाथ में दे देना"[16]

इस बात से यह स्पष्ट होता है कि आंबेडकरवादी दृष्टिवाला कवि कितना सचेत है। आंबेडकर के विचारों को जनमानस तक पहुँचाना और उनको अपने अधिकारों के प्रति आंदोलित करना ही आंबेडकरवादी अपना कर्तव्य मानते हैं। समाज में स्वातंत्रता, समता और बंधुता स्थापित करने की दृष्टि से जातिहीन, वर्गहीन, वर्णहीन, धर्मनिरपेक्ष, शोषणमुक्त समाज निर्माण करना इनका उद्देश्य है । जिस कवि के पास आंबेडकरवादी दृष्टि होगी, वही कवि स्वातंत्रता, समता, बंधुता और न्याय के लिए प्रतिबद्ध होगा। उपरोक्त सभी कवियों में प्रखर आंबेडकरवादी दृष्टि और उसके लिए प्रतिबद्ध स्वर दिखाई देता है।

निष्कर्ष :

आंबेडकरवादी साहित्य और दलित साहित्य यह दोनों स्वतंत्र संकल्पनाएँ हैं। आंबेडकर की विचारधारा से प्रेरित साहित्य को आंबेडकरवादी साहित्य कहा जाता है। आंबेडकरवादी साहित्य केवल अनुभवों का बखान नहीं करता बल्कि अन्याय, अत्याचार के विरोध में आवाज़ उठाता है। यह साहित्य सांवैधानिक मानवाधिकार की मांग करता है। इस विचारधारा से प्रेरित हिंदी-मराठी की कविताएँ शिक्षा के प्रति समाज को जागृत करना चाहती हैं क्योंकि परिवर्तन शिक्षा से ही संभव है। स्वातंत्रता, समता और बंधुता की मांग इन कविताओं का मूल स्वर है।

संदर्भ सूची :

1. डॉ. मनोहर यशवंत (2012), आंबेडकरवादी मराठी साहित्य, नागपूर : युगसाक्षी प्रकाशन, पृ. 51
2. पवार ज.वि., आंबेडकरवादी साहित्य का इतिहास, https: www.forwordpress.in

3. वाल्मीकि ओमप्रकाश (2009), अब और नहीं, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 13
4. धूमिल (1977), कल सुनना मुझे, वाराणसी : युगबोध प्रकाशन, पृ. 63
5. मोरे दामोदर (2001), सदियों के बहते जख्म, मुंबई : अखिल भारतीय साहित्य परिषद, पृ. 62
6. वाल्मीकि ओमप्रकाश (1997), बस्स बहुत हो चुका, दिल्ली : वाणी प्रकाशन, पृ. 03
7. वाल्मीकि ओमप्रकाश (2009), अब और नहीं, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ. 69
8. निंबाळकर वामन, गावकुसाबाहेरी कविता आस्वाद आणि समीक्षा, मुंबई : प्रबोधन प्रकाशन, पृ. 07
9. ढसाळ नामदेव, गोलपीठा, मुंबई : लोकवाङ्मय गृह प्रकाशन, पृ. 72
10. सं. डांगळे, उपाध्ये, पेंडसे व नाईक (2001), लोकशाहीर अण्णाभाऊ साठे निवडक वाङ्मय, मुंबई : महाराष्ट्र राज्या साहित्या व सांस्कृतिक मंडळ, मलपृष्ठा
11. कुसुमाग्रज, निवडक नारायण सुर्वे, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई (1996), पृ. 09
12. राजपंखे मुकुंद के अप्रकाशित गज़ल संग्रह से
13. नवे दलित कवि, मराठी दलित साहित्य : शैली व समज,
14. रंगराव सं.बी. (2007), मराठी दलित कविता, दिल्ली: साहित्य अकादमी, पृ. 73
15. लीलवान जयप्रकाश (2009), नए क्षितीजों की ओर, दिल्ली : अनामिक पब्लिशर्स, पृ. 30
16. मोरे दामोदर (2001), सदियों के बहते जख्म, मुंबई : अखिल भारतीय साहित्य परिषद, पृ. 97

****